भारतीय दलित साहित्य कथा-कोश

(पंजाबी)

संपादक :
रमणिका गुप्ता

भारतीय दलित साहित्य
कथा-कोश : पंजाबी

सम्पादकीय

दलितों की अदम्य जिजीविषा को रेखांकित करती कहानियाँ

आमतौर पर देश-दुनिया में पंजाब और पंजाबी जनजीवन की छवि बड़ी लुभावनी रही है। मेहनतकश, मस्तमौला पंजाबी लोग, लहलहाते खेत, ट्रैक्टर-ट्यूबवेल के जरिए बड़े पैमाने पर हो रही कृषि उपज, संपन्न-खुशहाल घर-परिवार! हरित क्रांति ने पंजाब की इस छवि को और मजबूती प्रदान की। मगर पंजाब के दलित कथाकार समय-समय पर इस कथित खुशहाली और उजली छवि का एक दूसरा पहलू अपनी लेखनी के जरिए सामने लाए, जो हमें चौंकाता है।

लाल सिंह, अतरजीत, स्वरूप सियालवी, भगवंत रसूलपुरी, द्वारका भारती और प्रेम गोरखी आदि सरीखे दलित लेखक दुनिया को पंजाब का वह चेहरा दिखाते हैं, जहाँ जात-पात की जड़ें मजबूत हैं, कमज़ोर तबकों के साथ भेदभाव, शोषण, गैरबराबरी और दलितों के साथ हिंसा आम बात है।

हालाँकि पंजाब के कई सवर्ण लेखकों ने भी दलितों के साथ हो रहे भेदभाव को अपनी रचनात्मकता का विषय बनाया लेकिन दलित लेखकों ने जिस ऊर्जा और आवेग के साथ अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति दी, उसकी तुलना में सवर्ण लेखकों का दलितों पर किया गया 'सहानुभूतिपूर्ण लेखन' भाषा, शैली के हिसाब से उत्कृष्ट भले ही हो पर प्रमाणिक नहीं हो सकता था।

ये कहानियाँ प्रतिरोध की ही नहीं, बल्कि पंजाब के वंचित तबकों के नए तरह के सौंदर्यबोध निर्माण की कहानियाँ भी हैं। यहाँ द्वारका भारती की अदम्य जिजीविषा की 'बागो मौसी' है, जो मरे जानवरों के खाल कुछ इस तरह उतारती है मानो कोई नया हुआ कलाकार अपनी कलाकृति रच रहा हो। अतरजीत का 'अदना इंसान', एक ऐसा मामूली आदमी है, जिसे सब कुछ खो देने के बाद भी अपने आत्मसम्मान से समझौता गवारा नहीं है। 'बेदाग अस्मत' की बहादुर दलित नायिका खुद के साथ बलात्कार करने आए सवर्ण पुरुष का संहार करने से भी नहीं हिचकती।

जगरात धौला की 'नीम निशानी' मानवीय रिश्तों की कहानी है। परिवार की

बहू का रिश्ता गुपचुप तरीके से अपने 'कमीन' (कमिया) से है। सांप काटने से कमीन की मृत्यु हो जाती है। घर की बहू का बेटा उसी 'कमीन' की औलाद है। कमीन की बहू का ससुर कमीन के मरने के बाद उसकी पत्नी पर बुरी नज़र रखता है। कमीन की पत्नी अपना दुख बहू के साथ साझा करती है। बहू और कमीन की पत्नी में बहनापे का रिश्ता कायम हो जाता है। बहू बताती है कि उसका बेटा कमीन का यानि उसी के पति का ही बेटा है। कहानी खत्म हो जाती है लेकिन औरत की संवेदना की एक लकीर देर तक फलक पर खिंची रहती है। बेटे के रूप में वही लकीर उन दोनों 'जनियों' की साझा 'नीम निशानी' बन जाती है।

इन कहानियों के साथ-साथ स्वरूप सियालवी सरीखे 'जीनियस' भी पंजाबी दलित साहित्य के खाते में हैं। वे अपनी कहानी काल-कालांतर में पुरातन काल से आज तक कमज़ोर तबकों के खिलाफ हो रहे अन्याय-अत्याचार को चौकन्नी तार्किकता और गहरी कलात्मक सूझ-बूझ के साथ सामने लाते हैं। पंजाबी ही नहीं, किसी भी भाषा में स्वरूप सियालवी जैसा लेखक होना गौरव की बात है। एक महत्ती उपलब्धि है काल-कालांतर।

कहानी लेखक दलितों की भावनाओं और जाति भेद की त्रासदी की खोज में महाभारत युग तक पहुँच जाते हैं। युगों के मलबे में दबे विभेद के इतिहास से लेखक एक-एक पत्थर उठाते जाता है और बताते रहता है कि युगों के मलबे की गहरी परतों को भेदता हुआ यह जाति का बीज कैसे सहस्र विष-बेलों के रूप में हर युग को आच्छादित किए रहा है। कर्ण से शुरू होकर यह कथा अंबेडकर तक पहुँचती है। इस कहानी में एक लंबी बहस है, जो वर्तमान सत्य के बटखरों से इतिहास को तोलती है, वह भी बड़ी संजीदगी से। कर्ण से शुरू हुई—तीन लोगों की यह विगत-यात्रा, कई युगों के पड़ाव पार कर, वर्तमान के एक क्लास रूम तथा खटिया पर बैठे तीन साथियों के मिलन-स्थल पर पहुँचती है। एक अध्यापक—अरविन्दर सर सूत्रधार बन कर सभी युग-पात्रों का विश्लेषण करते जाता है।... क्लासरूम एक बड़े इतिहास का फलक बन जाता है, जिसमें महाभारत घटता है, बुद्ध प्रवेश करते हैं और बगल की बस्ती में रहने वाले यायावर बंजारे भी हस्तक्षेप करते हैं। इस महाभारत स्तरीय कथा के 'संजय' अरविन्दर सर हैं। तीनों साथी धृतराष्ट्र से थोड़ा फर्क हैं.. .वे केवल हंगूरा ही नहीं भरते बल्कि याद दिला कर इतिहास की टूटी कड़ियाँ भी जोड़ते हैं। वे कथा-यात्रा को आगे बढ़ाते हुए उसे वर्तमान संदर्भों से भी जोड़ते चलते हैं। राहुल सांकृत्यायन जैसे 'वोल्गा से गंगा में आदिम की विकास यात्रा को युगवार प्रस्तुत करते हैं—स्वरूप सयालवी ने उसी प्रकार दलित और जाति के उद्भव, उसके विकास और समय-समय पर हुए उसके विरोध की कथा भी चार चरणों में ब्योरेवार रखी है।

भगवंत रसूलपुरी की 'आदि-डंका' कहानी पंजाब में एक लहर की तरह उभरे

आदिधर्म के उद्भव और पराभव की कथा है, जिसे लेखक ने कई झांकियों में प्रस्तुत किया है। कैसे आदि-धर्म प्रवर्तक मंगुराम को सवर्णों और सिक्खों का मुकाबला करना पड़ा, इसका सटीक व प्रासांगिक ब्योरा वर्णनात्मक व संवाद शैली में इस कहानी में दर्ज है। यह कहानी पंजाब में आई आदि-धर्म की लहर के ऊफान के उस वक्त से शुरू होती है, जब 'लायक पुत्र चमारों में' के गायक के पोस्टर नुक्कड़-नुक्कड़ लगने लगे। गुरुद्वारों के नाम 'सतिगुरु-रविदास धाम' रखे जाने लगे। मंगूराम इस लहर के सूत्रधार और प्रेरक थे, तो संत शूद्रानंद प्रचारक। बेगमपुर उनका गढ़ था—शूद्रानंद आंदोलन चला रहे थे और गाँव-गाँव जाकर अछूतों को संगठित कर रहे थे। उन्होंने दलितों, खासकर चमारों और वाल्मीकियों को साथ लेकर गोरी सरकार से मांग की थी कि वे उन्हें जनगणना में हिंदू न लिखकर—'आदि-धर्मी' लिखें और बराबरी का दर्जा दें। उन्होंने अपने ग्रंथ का नाम भी गुरु-ग्रंथ साहिब से बदलकर 'आदि प्रकाश' रख लिया। सभी इसी का पाठ करने लगे। अपनी अलग पहचान दर्शाने के लिए उन्होंने लाल रंग की पगड़ी भी पहननी शुरू कर दी।

आपस में संबोधन भी वे 'जयगुरुदेव' कह कर करने लगे। उन्होंने ग्रंथ साहब को भी अपने गुरुधाम से हटाने की मांग कर दी थी। इस मांग के विरोध में आदि-धर्मियों पर सिख संतों का दबाव बराबर बढ़ते जा रहा था। वे इन्हें गुरुद्वारे से जोड़ने का आश्वासन तो दे रहे थे, पर वे उसे आज तक पूरा नहीं कर पाए थे। वह समय था जब नारे लगते थे—'रविदास शक्ति अमर रहे', 'जो हमसे टकराएगा चूर-चूर हो जाएगा।' उसी काल में संत पर गोली चल गई और शुरू हो गई मार-पीट...! हिंसा...कर्फ्यू लग गया।

ये कहानी इन सभी घटनाओं का इतिहास भर नहीं है। ये पंजाब में दलितों में आ रही चेतना के वर्णन के साथ-साथ सिखों की मठाधीशी हेकड़ी और दलितों की आदिधर्मी लहर के विरोध को भी उजागर करती है। इस आंदोलन से, खासकर सिक्ख मठाधीशों को अपना वर्चस्व टूटने का खतरा महसूस हो रहा था।

डॉ. अंबेडकर सिख धर्म अपनाना चाहते थे लेकिन बाद में वे इस विचार से विमुख हो गए। क्यों? इस पर कहानी का निम्न संवाद दलितों की पीड़ा को उजागर करता है—*"सरदार जी, छह करोड़ 'रंगरेटे गुरु के बेटे' गुरु घर के दरबार में आए, धक्के मार कर लौटा दिए गए।"* लेकिन पंजाब के दलित की इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए, लेखक इस बात की तसदीक भी करता है कि सिक्ख होने के बावजूद पंजाब में जाति विभेद पुख्ता रूप से व्याप्त था और है। गुरुद्वारों में दलितों के लिए केवल लंगर ही तो खुले हैं—पर उन्हें आज भी सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली, ना ही सामाजिक रिश्ते बन पाए। वाल्मीकियों को मजहबी सिख तो करार कर दिया गया—पर उनका सिक्ख संगत द्वारा गुरुद्वारे में आदरपूर्वक प्रवेश वर्जित रहा। इसके चलते उन्हें अपने गुरुद्वारे भी अलग बनाने पड़े।

दलितों में आई ये चेतना भी इस कहानी में दर्ज है कि दलितों को अपनी पहचान बनाने के लिए सबसे पहले पढ़ने-लिखने की जरूरत है—तभी दलितों में चेतना का विकास होगा। यह भी वे जान रहे थे कि पहचान बनाने के लिए उनकी एकता जरूरी है। इसी एकता के न बन पाने के कारण आंदोलन बिखर गया। आदिधर्मियों में फूट पड़ गई। आर्य समाजियों ने आदि-धर्म को तोड़ने के लिए साजिशें रचीं। दलित, समाज के 'अछूत उद्धार मंडल' और 'आदिधर्मियों' के दो खेमों में बंट गए। आदिधर्म के विरोध होने और गुरु को गोली लगने पर पूरा पंजाब हिंसा की चपेट में आ गया। आगजनी और मार-पीट की घटनाएँ गाँव-गाँव में होने लगीं। क्फ़्यू लग गया। इस हिंसा का कारण क्या था?

इसी कहानी में इस हिंसा का कारण किन शब्दों में एक पिता बयान करता है—उसका उद्धरण निम्न है।

"देख रहा हूँ पुत्तर...यह अस्तित्व की लड़ाई है। भूख की लड़ाई है। जिन्होंने ये आग लगाई है, शराब की बोतलें सड़क पर तोड़ी हैं, पी हैं, उनका कसूर नहीं है। जिस कौम को इतना दबाकर रखा गया हो, कोई पहचान ही न दी गई हो, वह तो भैया यही सब कुछ करेगी न?...आदमी को कौन हिंसक बनाता है?...अब खतरा तुम्हारे अस्तित्व पर है। धर्म तो तुम्हारा है ही नहीं।"

न अस्तित्व...न धर्म... न पहचान। कुछ भी न होने की ये पीड़ा दलित समाज को आज भी साल रही है।

पंजाबी का दलित लेखक कहता है—"गोरों के समय से अपनी पहचान ढूँढ रहा हूँ? मुझे कोई बता क्यों नहीं रहा?... भले आदमी, तेरी पहचान ये है... 'मैं', जो मैं नहीं हूँ'! डंके जरूर बजते रहेंगे...मगर 'मैं' नहीं मिल पाएगा।"

इस कहानी में दलित आंदोलन के पूरे मुद्दे दर्ज हैं। उसकी पीड़ा...उसका संकल्प, उसके सपने...आकांक्षाएँ, जय-पराजय और उसके बाद फिर एक खोज...एक प्रश्न, जिस का उत्तर मिलना अभी भी बाकी है। यह प्रश्न है दलित कौन है ?...मनुष्य है? ...हिंदू...उसे जीन का हक है या नहीं...वह समाज का हिस्सा है या नहीं?... यदि वह मनुष्य है, तो उसे मनुष्य की तरह जीने क्यों नहीं दिया जाता?

जब हमने रमणिका फाउंडेशन से युद्धरत आम आदमी का 'पंजाबी साहित्य में दलित कदम' नाम से विशेषांक 58 निकालने के लिए दलित लेखकों से सन् 2001 में रचनाएँ मांगी, तो कई दलित लेखक खुद को दलित लेखक कहने से कतराते हैं। उन्हें डर था कि अपनी दलित पहचान उजागर करने पर कहीं वे उन साहित्यिक संगठनों द्वारा बहिष्कृत न कर दिए जाएँ, जिनके साथ जुड़कर वे साहित्य में प्रतिष्ठित हुए हैं या होने की प्रक्रिया में हैं। इस विशेषांक के निकलने के बाद इस मुद्दे पर काफी लंबी बहस भी चली कि साहित्य को साहित्य ही कहा जाए या दलितों द्वारा लिखे सृजन को 'दलित साहित्य' कहा जाए! इसके बाद पंजाब में

दलित साहित्य व दलित लेखक ही चर्चा में आए।

पंजाबी दलित साहित्य की इन सारी उपलब्धियों के बावजूद कुछ बातें खटकती हैं। मसलन पंजाबी दलित साहित्य में अब तक अपनी उल्लेखनीय पहचान बनाने वाली कोई दलित लेखिका उभर कर नहीं आ सकी। उपन्यास लेखन में भी सूना पड़ा दिखता है। दलित उपन्यास द्वारा लिखा गया एक मात्र उपन्यास 'मशालची' है, जिसके लेखक हैं **गुरुशरण राव**। यह उपन्यास रमणिका फाउंडेशन के प्रयास से हिंदी में अनूदित होकर चर्चित हुआ। इसका अनुवाद द्वारका भारती ने किया। एक सार्थक पहल, जो पंजाबी दलित लेखकों ने की, वह यह कि उन्होंने अपनी रचनाओं में जाति यानी वर्ण के साथ-साथ, वर्ग-विभेद को भी दर्ज किया। वे वर्ण और वर्ग-दृष्टि से अपने यथार्थ को समझने और लिखने का प्रयास करते हैं। पंजाबी साहित्य का रूझान बहुमुखी है। **दलितों के हरवर्ग को, चाहे वह मजदूर हो, सवर्ण हो, किसान हो या मध्यवर्गीय नौकरीपेशा वर्ग अथवा नेता, सभी को दलित लेखकों की कलम ने छुआ है।**

यह भारतीय दलित कथा-कोश पंजाब के दलितों की भोगी हुई पीड़ा और अदम्य जिजीविषा को रेखांकित करने का प्रयास है।

पंजाबी दलित-कथा का यह महत्ती कोश पाठकों के हाथ में सौंपते हुए हम यह उम्मीद करते हैं कि भविष्य में पंजाबी दलित कथा लेखन में महिलाओं का उभार देखने को मिले और वहाँ दलित लेखकों की युवा पीढ़ी, बड़े फलक पर शोषण व गैरबराबरी को बेनकाब करते हुए कहानियों, नाटकों व कई उपन्यासों के साथ सामने आए।

—रमणिका गुप्ता

अनुक्रम

संपादकीय 5

काल-कालांतर — स्वरूप सियालवी 13
अनुवाद : द्वाराका भारती

अदना इन्सान — अतरजीत 65
अनुवाद : स्वयं

अवदान — केवल सिंह परवाना 87
अनुवाद : द्वारका भारती

बेदाग अस्मत — कलसी लंडे 94
अनुवाद : द्वारका भारती

चीख़ — गुरमीत कड़ियालवी 100
अनुवाद : द्वारका भारती

आदि-डंका — भगवंत रसूलपुरी 110
अनुवाद : जसविन्दर कौर 'बिन्द्रा'

आधा मानसु — मोहनलाल फिलौरिया 132
अनुवाद : जसविन्दर कौर 'बिन्द्रा'

धरती-पुत्र — प्रेम गोरवी 139
अनुवाद : जसविन्दर कौर 'बिन्द्रा'

नीम-निशानी — जगराज धौला 146
द्वारका भारती

गौरजां — अजमेर सिद्धू 154
अनुवाद : मदन वीरां

आधे-अधूरे *लाल सिंह* 163
अनुवाद : जसविन्दर कौर 'बिन्द्रा'

ठीहा बलीजीत 179
अनुवाद : द्वारका भारती

दारो घतिती प्रीत जी पुरी 190
अनुवाद : द्वारका भारती

बागो मौसी *द्वारका भारती* 222
अनुवाद : स्वयं

काल-कालांतर

लेखक : सरूप सियालवी
अनुवाद : द्वारका भारती

आफ़िस की दिनचर्या निभाने के साथ-साथ जब तक मेरे पास कुछ बेहतरीन सोचने-समझने, पढ़ने-लिखने को कुछ न हो, तो मुझे अपना वजूद घटिया-सा लगने लगता है। प्रातः बिस्तर से उठ कर नाक पर ऐनक जमाते हुए बुरा प्रतीत होता है। लगता है यह ऐनक गिर कर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाती?

परंतु अब जो बातें मेरे अंतर्मन में निरंतर गहराती जा रही हैं, यह सोचकर दुःख होता है कि इनके प्रति इससे पहजे मैंने क्यों नहीं सोचा। मैं उठ कर सबसे पहले ऐनक सहेजता हूँ... सचमुच ही कहीं टूट कर बिखर न जाए।...जिस प्रकार हर आदमी अपने विचारों को बाँटना चाहता है..., मैं भी इन्हें बाँटना चाहता हूँ..! कोई इन्हें ध्यानपूर्वक सुने या न सुने, समझे या न समझे, बस मैं अनवरत बोलता ही जाऊँ।

प्रतिदिन जमने वाली मित्र-मंडली में मैं कभी-कभार ही शामिल हो पाता हूँ। हंसी-मज़ाक की बातों का दौर चलता रहता है। इंद्रजीत सौ रुपए का कड़कड़ाता नोट ऊपरी जेब से निकाल होंठों में मुस्कुराता है–

"लाओ, निकालो जल्दी... क्यों देरी करनी है... पीनी तो है ही...।"

मैं और फौजी एक दूसरे की ओर देखते हुए सौ-सौ का पत्ता निकालते हैं और वेटर को दारू के ठेके पर भेज देते हैं।

फ़ौजी के टैंट-हाऊस पर अपनी भतीजी के विवाह के लिए टैंट व क्राकरी का सामान बुक करवाने के लिए आया व्यक्ति, उसका पुराना ग्राहक होने के कारण, हमारे पास आ बैठा। इंद्रजीत ने अपने सधे हाथों से उसके लिए एक पेग बना दिया।

"भाई साहब अगर पिलानी ही है, तो इसमें डाल दो।"

वह इसका कारण बताता है।

"पहाड़ी-गाँवों में हम एक दूसरे को जाति तौर पर जानते-पहचानते हैं। नीची जाति का बंदा हमारे साथ बैठ कर पीने की जुर्रत नहीं कर सकता। पर इन शहरी

लोगों का कुछ पता नहीं चलता। चूहड़े-चमारों के गिलासों में पी लेते हैं। बाद में उनकी जाति का पता चलते ही दुःख होता है।... यानि पी हुई एकदम उतर जाती है। भाई गुस्सा न करना... मैंने इसके साथ बैठ कर न खाने-पीने का नियम बनाया हुआ है।''

यदि यह व्यक्ति आज से दस वर्ष पहले मुझे मिला होता... शायद मैं उससे उलझ बैठता। तब मैं बी.ए. करने के बाद, खाली होने के कारण घर पर विद्यार्थियों को टयूशन पढ़ाया करता था। एक दिन पड़ोस के गाँव का एक बजुर्ग मैले-कुचैले कपड़े पहने दसवीं कक्षा में पढ़ते अपने पौत्र को लेकर मेरे पास आया। मैंने उसका सम्मान करते हुए उसे ज़लपान के लिए आग्रह किया।

''मैंने तुम लोगों के घर का कुछ न खाने-पीने का नियम बनाया हुआ है।''

वह खड़ा-खड़ा ही बोला था। मुझसे रहा न गया—''जो हमारे घर का खाता नहीं...मैंने उसको न पढ़ाने का नियम बनाया हुआ है...अपने लड़के को साथ ही लेता जा।'' मैंने कहा।

मैं उसे ताकता जा रहा था। मैंने सोचा फौजी को जाति की उच्चता दिखाने वाले को झाड़ पिलानी चाहिए, यह सोचकर मैंने कहा था—

''मेरी और मेरे बाप की तीस हजार रुपए की पैंशन है। पद्रह बीस हजार टैंट की आमदनी है। तुम लोगों से बढ़िया मकान है। बढ़िया खाते-पीते हैं। तू देसी घी डकार रहा है, वह भी नमक की चुटकी से। हम ह्विस्की पी रहे हैं। फल-फरूट के साथ।''

सामने वाला 'हीं-हीं' कर हँसा और देसी घी के बचे हुए घूँट निगल कर चलने को हुआ।

परंतु ऐसा नहीं हुआ। फौजी को टैंट का सामान बुक करवाने आए ग्राहक से मतलब है। वह बिल्कुल नहीं बोला। मेरे भी विचार अब बदल गए हैं। अब मैं हर उस बात को जानने के प्रयत्न में रहता हूँ, जिससे हमारे लिए ऐसे हालात् बने?

वह दारू का पैग ऊपर उठा कर बोला, ''यह तो भई देवताओं और राक्षसों के समुद्र-मंथन से निकला तेहरवां रत्न है।''

मैं उसे हँसी-हँसी में बताता हूँ कि इंद्र देवता भी, इंद्राणी को 'भैरा' नामक मदिरा पेश किया करता था, जिस प्रकार इंद्र ने उसे पेश की है।

''हाँ भई यह तो खुशकिस्मत लोगों को ही प्राप्त होती है।'' ऐसा लगा है कि उसने पहले ही पी रखी थी। वह स्कूटर की डिग्गी से बोतल निकाल लाया।

''लो अब घर की निकाली का स्वाद भी चख़ो। ह्विस्की तो आपने पी के देख ही ली है।''

''मैं देसी दारू के बारे में बताता हूँ। तुम लोग दारू निकालने के लिए कच्चे